Vol.12 Nov.-Dec.'18 No.4-5
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण

BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन
C2A/58 Janakpuri, New Delhi - 110058

दुनिया यह कर्मक्षेत्र है

-प्रार्थना सुमन

दुनिया यह कर्मक्षेत्र है, कोई सैरगाह नहीं।
जब तक है साँस तन में प्रभु को भुला नहीं।।
खुशकिस्मती से है मिला चोला मनुष्य का।
जीती हुई बाजी तू इसको हरा नहीं।।

बाजी बिछी है काम, क्रोध, लोभ, मोह की।
खेला अगर यह खेल तो बस तू फँसा नहीं।।
धन-माल जिस पै इस कदर फूला हुआ है तू।
यह तो किसी के आज तक हमराज रहा नहीं।।

मदमस्त हो विषयों का मय पीके तू रात दिन।
ओ बेखबर, दम का तेरे कुछ भी पता नहीं।।
तृष्णा न यह मिटेगी, न भोग होंगे कम।
लेकिन तू ही मिट जाएगा, तुझको खबर नहीं।।

करना है धर्म-कर्म जो, वह कर ले आज ही।
कल का तो कुछ पता नहीं, होगा कि या नहीं।।

प्रत्यक्षाप्तोपदेशाभ्यामनुमानेन वा पुनः।
बोद्धव्यं सततं राज्ञा देशवृत्तं शुभाशुभम्।।
चारैः कर्मप्रवृत्त्या च तद्विज्ञाय विचारयेत्।
अशुभं निर्हरेत् सद्यो जोषयेच्छुभमात्मनः।।(महाभारत, अ.-145

प्रत्यक्ष देखकर, विश्वसनीय पुरुषों से जानकारी लेकर अथवा युक्तियुक्त अनुमान करके शासक को सदा देश के शुभ-अशुभ का हाल जानते रहना चाहिए। गुप्तचरों द्वारा और देश में हो रही हलचलों से शुभ और अशुभ स्थिति का आकलन करके शासक को अशुभ शक्ति का तत्काल निवारण करना चाहिए और अपने लिए शुभ स्थिति लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

Brahmarpan Nov.-Dec.'18 Vol. 12 No.4-5
कार्तिक–मार्गशीर्ष–पौष 2075 वि.संवत्

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

CONTENTS

1. दुनिया यह कर्मक्षेत्र है 2
–प्रार्थना सुमन
2. संपादकीय 4
3. श्रद्धानन्द शूर अलबेला - I 7
–राजेन्द्र जिज्ञासु
4. पंजाब केसरी लाला लाजपतराय 8
–दीनानाथ सिद्धान्तालंकार
5. संवाद और संवेदना का शिखर अटल बिहारी वाजपेयी 16
–बृजेश शुक्ल
6 संसद : एक विहंगम दृष्टि 19
सुभाष कश्यप
7. भारत की दुर्दशा के कारण? उसके आन्तरिक शत्रु! 23
–भारतमित्र फ्रैंको गोतिए
8. अहिंसा के ध्वजवाहक राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी 28
–राजकरनी अरोड़ा
9. आर्य समाज की महान विभूति : डॉ. भवानी लाल भारतीय 30
–डॉ. विवेक आर्य
10. The PM we must now Remember
-Ramachandra Guha 33

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
*email:*deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com
Website : www.thearyasamaj.org
of Delhi Arya Pratinidhi Sabha

Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar 0124-4948597
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta *V.President*
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer
Editorial Board
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar,
Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Shri Shiv Kumar Madan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062
Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

संपादकीय

सिखों की माँग–उनकी अलग हो पहचान।

–डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

हिन्दू धर्म एक विशाल छत्र के समान है जिसकी छत्रछाया में अनेक मत आश्रय लिए हैं। इनमें बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव, लिंगायत आदि अनेक मत हैं। गुरुनानक देव का जन्म हिन्दू परिवार में हुआ था। उनके अनुयायी हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। बाद में गुरु गोबिन्द सिंह ने हिन्दुओं और जनेऊ की रक्षा के लिए सिखों (शिष्यों) की अलग पहचान बनाने के लिए उनके लिए पाँच ककार (केश, कड़ा, कंधा, कच्छा और कृपाण) नियत कर दिए। अतः वे हिन्दुओं के ही अंग रहे। आज दो दशक पूर्व स्वर्ण–मंदिर के अकाल तख्त के जत्थेदार ज्ञानी जोगिन्दर सिंह ने एक बड़ा तीखा बयान दिया कि सिख हिन्दू नहीं हैं। उनकी हिन्दुओं से अलग पहचान रहनी चाहिए। इस उत्तेजक बयान की पृष्ठभूमि थी कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के अध्यक्ष श्री सुदर्शन ने पंजाब में अपने भाषण में कहा कि सिख तो हिन्दू ही हैं। सिखों की एक संगत हिन्दू–सिख भाईचारे का समर्थन करती है। हिन्दुओं और सिखों में भाईचारा, प्रेम, मित्रता और एकता बढ़े इससे क्षुब्ध होकर अकाल तख्त के जत्थेदार ने बयान दिया जिसका अकाली दल के नेताओं ने समर्थन किया। उनका कहना था कि यदि सिखों को हिन्दू मान लिया जाए तो इससे खतरनाक़ बात क्या हो सकती है? इससे तो सिखों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।

उनके अनुसार सिखों की अलग पहचान है क्योंकि वे केश बढ़ाकर रखते हैं, उन्हें कटवाते नहीं। सिर पर पगड़ी बाँधते हैं, कृपाण साथ रखते हैं, हमेशा कच्छा पहनते हैं और बालों के लिए कंघा रखते हैं तथा कड़ा धारण करते हैं। सेना में उन्हें वीर योद्धा समझा जाता है। लेकिन आपरेशन ब्लू स्टार

के बाद उनकी राष्ट्र के प्रति निष्ठा और इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद उनकी सत्यनिष्ठा पर प्रश्नचिह्न लग गया क्योंकि जिसकी सुरक्षा में उन्हें नियुक्त किया गया था उसकी ही उन्होंने हत्या कर दी। इससे जहाँ हजारों सिखों ने देश के लिए प्राण देकर देशभक्तों के रूप में छवि बनाई थी उसे जनरैल सिंह भिंडरावाले, सतवीर सिंह और बेअन्त सिंह जैसे सिखों ने मटियामेट कर दिया।

सन् 1946 में जब मुसलमानों ने भारत से पृथक् अपने लिए पाकिस्तान माँगा था तब सिखों ने भी स्वतंत्र खालिस्तान की माँग की थी। जैसा कि ऊपर बताया कि सिखों के गुरुनानक देव हिन्दू थे। देश के तत्कालीन शासक आक्रान्ता मुसलमान थे। उनके अत्याचारों का सामना करने के लिए उन्होंने नया मत चलाया। उनके अनुयायी अपने को गुरु का शिष्य (सिख) कहते थे। हिन्दू परिवारों से पहले बच्चे को माँगकर सिख सम्प्रदाय बना। इनमें कभी परस्पर कोई विरोध नहीं रहा। गुरु तेगबहादुर और गुरुगोविन्दसिंह ने हिन्दुओं की रक्षा के लिए मुसलमानों से संघर्ष किया। इसी दौरान उनके बच्चों की मुसलमानों ने हत्या कर दी थी।

सन् 1947 में जब सिख नेता मास्टर तारासिंह ने एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में खालिस्तान की माँग की तब सरदार वल्लभ भाई पटेल ने इसे नासमझी की बात बताया। उन्होंने कहा कि हिन्दू और सिख तो भाई-भाई हैं। सारा भारत हिन्दुओं के साथ सिखों का भी है। सिख केवल पंजाब में ही नहीं रहते, वे भारत के सभी राज्यों में रहते हैं। मुझे खालिस्तान देने में कोई ऐतराज नहीं। पर सोच लीजिए खालिस्तान बनने पर भारत के सब सिखों को खालिस्तान में जाना होगा। कोई सिख भारत में नहीं रहने पाएगा। यह एकदम घाटे का सौदा था। मास्टर तारासिंह ने खालिस्तान की माँग छोड़ दी। जो बात सरदार पटेल ने मा. तारासिंह से कही थी, वही बात श्री मोहनदास गाँधी और नेहरू मुहम्मद अली जिन्ना से नहीं कह सके।

गाँधी जी हिन्दू-मुस्लिम एकता और सर्वधर्म समभाव के मिथ्या जाल में फँसे थे। यदि जिन्ना से साफ तौर पर कहा जाता कि धर्म के आधार पर जनसंख्या की अदला-बदली की जाएगी तो संभवतः जिन्ना झिझकते। परंतु गाँधी जी की व्यवहारज्ञानशून्यता के कारण हुआ यह कि पाकिस्तान से तो अधिकांश हिन्दू पीट कर भगा दिए गए और भारत के मुसलमान ज्यों के त्यों बने रहे। यहाँ तक कि जो मुसलमान पाकिस्तान जा रहे थे उन्हें भी गाँधी जी ने आग्रह करके रोक लिया। इतना ही नहीं बाद में असम और पश्चिमी बंगाल में करोड़ों मुसलमान चोरी-छिपे भारत आ गए। हमारी भ्रष्ट सरकारें वोट बैंक की राजनीति के तहत सब कुछ देखती रहीं। टुच्चे भ्रष्ट अफसरों ने सौ सौ रुपए रिश्वत लेकर उनके राशन कार्ड बनवा दिए और वोटर लिस्ट में नाम दर्ज करवा दिए।

हम चर्चा सिखों की अलग पहचान की कर रहे थे। सन् 1980 के दशक में जब पंजाब में आतंकवाद का जोर था तब फिर यह माँग उठी थी कि सिखों को अलग स्वतंत्र राज्य (खालिस्तान) दिया जाए लेकिन यह बात स्वयं सिखों के हित में नहीं थी इसलिए उन्होंने इस माँग को छोड़ दिया। इन तथ्यों के बावजूद जत्थेदार जोगिन्दर सिंह का बयान विशेष ध्यान देने लायक है। ऐसा भी सुना गया कि कुछ सिख नेताओं ने कहा कि अपनी अलग पहचान बनाने के लिए सिखों को कुछ ऐसा काम करना चाहिए कि हिन्दू उनसे दूर हो जाएँ; जैसे-सिख गोमाँस खाना शुरू कर दें इससे हिन्दू उनसे अलग हो जाएँगे। वस्तुतः धर्म तो मन और विचारों पर आधारित होता है, भोजन, वस्त्र या बाहरी आडम्बर से उसका कोई लेना-देना नहीं।

श्री जोगिन्दर सिंह का बयान इसलिए और भी चिन्ताजनक है कि उस समय मुस्लिम आतंकवाद की छाया चारों ओर गहरी होती जा रही थी। आज भी देश में विघटन की प्रवृत्ति बढ़ रही है जो देश के विकास में बाधक है। हमें इस पर नियंत्रण करना होगा।

श्रद्धानन्द शूर अलबेला - I

–राजेन्द्र जिज्ञासु

स्वामी श्रद्धानन्द एक विलक्षण विभूति थे। वे अपनी शूरता, वीरता, त्याग व बलिदान से तो जाने पहचाने जाते ही हैं, उनके जीवन के और भी बहुत पक्ष हैं जिनकी ओर यथोचित ध्यान नहीं दिया गया।

अद्‌भुत ईश्वर विश्वास– पण्डित गोपीनाथ कश्मीरी ने कई नामी पत्रकारों पर मानहानि के केस किए और सबको गोपीनाथ के सामने हार मानकर क्षमा माँगनी पड़ी। उसने महात्मा मुंशी राम पर भी एक ऐसा ही केस कर दिया। इस अभियोग की पेशी पर दर्शकों की भारी भीड़ होती थी। महात्मा जी ने अपने लेख में उसे व्यभिचारी बयाता था। अपने कथन की पुष्टि के लिए कोई ठोस लिखित प्रमाण या साक्षी जब नहीं तो कोर्ट में केस कैसे लड़ेंगे? वकीलों की इस बात का आपके पास एक ही उत्तर था, भगवत् कृपा।

जब पेशी का समय हुआ तो पीछे से किसी ने आकर चुपचाप चिट्ठियों का एक बंडल आपके हाथों में थमाकर अपनी राह ली। इस बंडल में क्या था? गोपीनाथ व वैश्याओं का परस्पर पत्र–व्यवहार। यह थी महात्मा जी की भगवत् कृपा पर भरोसा। इसे उनके ईश्वर पर अटल विश्वास का चमत्कार कहें या कुछ और! गोपीनाथ पहली बार ही कोर्ट में पिटा। महात्मा जी ने उसे क्षमा कर दिया। गोपीनाथ जीवन भर उनका गुणगान करता रहा। उनके बलिदान पर उसने लिखा था, "पंडित लेखराम की शहादत याद आ गई।"

सदाचार व संयम की मूर्ति – महात्मा जी के बच्चे अबोध थे बहुत छोटे थे। पत्नी का निधन हो गया। आप सम्पन्न थे, बहुत प्रतिष्ठित थे। रायबहादुर लाल चन्द का मूल राज सरीखे बड़े लोगों ने बुढ़ापे में फिर विवाह रचा लिया। परन्तु महात्मा जी ने संयम रूपी छुरे की तीक्ष्ण धार पर चलने की दृढ़ता दिखाई। यह कोई साधारण सा तप तो नहीं था।

राष्ट्रभाषा के प्रेमी – लाख यत्न करने पर भी सद्‌धर्म प्रचारक के हिन्दी संस्करण के लिए एक सहस्र सदस्य न बन पाए। केवल 300 सदस्य के मिलने पर उर्दू में पत्रिका बंद करके हिन्दी में निकाल दी। ऐसा सच्चा व महान देशभक्त है कोई और। *क्रमशः–*

वेद सदन, अबोहर–252116

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

–दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

लाला लाजपतराय का जन्म 28 फरवरी सन् 1865 को अपने ननिहाल जिला फिरोजपुर (पंजाब) के ठोड़ी ग्राम में हुआ। इनके पिता राधाकृष्ण लुधियाना (पंजाब) के जगरावाँ कस्बे में रहते थे। पिता सरकारी प्राइमरी स्कूल में अध्यापक थे। लाजपतराय के तीन भाई और दो बहनें थीं। पिता का वेतन, कई वर्ष के बाद, 35 रु. मासिक तक पहुँचा था। पिता ने ऐसे स्कूल में शिक्षा पाई थी जिसका मुख्य अध्यापक एक मौलवी था। इसलिए उनके पिता राधाकृष्ण पर इस्लाम का गहरा प्रभाव था। वे घर पर नमाज़ पढ़ते, रोजे रखते, तहमद बाँधते और कुरान का पाठ करते थे। वैश्य और जैनी होने से मांस-भक्षण तो नहीं करते थे, पर मुसलमानों को प्रायः अपने घर भोजन कराते और कभी उनके घर खा आते, अथवा उनका पका भोजन अपने घर ले आते। मास्टर राधाकृष्ण को धार्मिक पुस्तकें पढ़ने का बड़ा शौक था। विश्व के सब मुख्य धर्मों की उन्हें अच्छी जानकारी थी। लालाजी ने 1911 में अपने पिता की स्मृति में जगरावाँ में 'राधाकृष्ण हाईस्कूल' स्थापित किया और कई प्राइमरी स्कूल खोले।

चोटी के वकील : आर्यसमाज में प्रवेश लाजपतराय कुशाग्रबुद्धि छात्र थे। 15 वर्ष की आयु में उन्होंने 1880 में पंजाब और कलकत्ता दोनों विश्वविद्यालयों से मैट्रिक परीक्षा पास की। फिर लाहौर गवर्नमेंट कॉलेज में दाखिल हो गये। एफ.ए. की पढ़ाई के साथ कानून की पढ़ाई भी शुरु कर दी। पिता मुश्किल से आठ–दस रुपये मासिक इस किशोर को भेजते। लाजपतराय को अत्यन्त कम खर्च करते हुए लाहौर जैसे नगर में पढ़ना पड़ा था। मुख्तारी पास करके 1883 में पहले जगरावाँ, फिर हिसार में और अन्त में 1892 में लाहौर में वकालत आरम्भ कर दी। हिसार में आप लगभग 6 वर्ष रहे और सफल वकील बने। मासिक आय हजार–डेढ़ हजार रु. थी। इनके कॉलेज–जीवन के

सहपाठियों में पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज, नरेन्द्रनाथ इत्यादि थे। इनके सहवास से, इन पर भी आर्यसमाज का प्रभाव पड़ा और हिसार में रहते हुए अपने आर्यसमाज में सोत्साह भाग लेना आरम्भ कर दिया। आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग प्रायः इनके मकान पर ही होते थे। पाँच वर्ष बाद लाजपतराय जी के उद्योग से ही हिसार में भव्य आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण हुआ। हिसार में वे नगर-पालिका के सदस्य और कई वर्ष तक इसके अवैतनिक मंत्री भी रहे।

डी.ए.वी कॉलेज के स्तम्भ- 1892 में आप लाहौर आ गये और प्रांत के मूर्धन्य वकीलों में आपने शीघ्र ही स्थान पा लिया। साथ ही गुरुदत्त जी और हंसराज जी के साथ मिलकर खूब उत्साह से आर्यसमाज की सेवा करने लगे। 1886 में महर्षि दयानन्द की स्मृति में लाहौर में डी.ए.वी. कॉलेज स्थापित हो चुका था। आपका इस संस्था के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। लालाजी की वक्तृत्व कला में तो दैवी शक्ति थी। आपका भाषण मुर्दा-दिलों में भी जोश पैदा कर देता था। डी.ए.वी. कॉलेज के लिए अपनी इस अद्भुत वाक्शक्ति का प्रयोग कर इन्होंने लाखों रुपया पंजाब और अन्य प्रान्तों में दौरा कर इकट्ठा किया और स्वयं भी अपने पास से पुष्कल दान देते रहे। इस कालेज की प्रबन्ध समिति के आप वर्षों तक मंत्री और उपप्रधान भी रहे। लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर धर्म-प्रचार और कॉलेज के लिए अपील लालाजी ही किया करते थे। हजारों की संख्या में श्रोता मंत्रमुग्ध हो आपका भाषण सुनते थे। लालाजी कई वर्ष तक डी.ए.वी. कॉलेज में बिना वेतन के, इतिहास और राजनीति पढ़ाते रहे।

अकालग्रस्त क्षेत्रों में सेवा-कार्य-आर्यसमाज की शिक्षा के प्रभाव से लालाजी दरिद्रनारायण की सेवा के लिए सदा अग्रसर रहते थे। 1883 में संयुक्त प्रदेश (उत्तरप्रदेश) के आगरा-बुंदेलखंड इलाके में और 1900 में राजस्थान में भयंकर अकाल पड़ा। फिर 1907 में उड़ीसा और मध्यप्रदेश में दुर्भिक्ष हुआ। हजारों

हिन्दू विधर्मी होने लगे। ईसाइयों ने जनता की गरीबी से अनुचित लाभ उठाने के प्रयत्न शुरू कर दिये। लालाजी ने अपने सहयोगी आर्य सदस्यों और स्वयंसेवकों सहित सहायता और राहत का काम संगठित रूप से प्रारंभ कर दिया। हजारों हिन्दुओं की रक्षा हुई। करीब 300 अनाथ बच्चों को लेकर जब लालाजी लाहौर स्टेशन पहुँचे तो नगर-वासियों ने हजारों की संख्या में वहाँ पहुँच उनका स्वागत किया। अनाथ बच्चों को इससे बड़ा आश्वासन मिला कि इतनी विशाल जनता उनके साथ है। इन अनाथ बच्चों के लिए लालाजी ने उसी समय आर्यसमाज की तत्वाधानता में लाहौर, फिरोजपुर और मेरठ में अनाथालय कायम किये। जीवन भर ये अनाथालय और जनता की बड़ी ठोस सेवा करते रहे।

कांगड़ा-भूकम्प में राहत-कार्य-1905 में पंजाब के काँगड़ा नगर में भयंकर भूकम्प आया। जन-धन की भारी क्षति हुई। लालाजी कालेज के छात्रों और अन्य आर्यसज्जनों के साथ वहाँ अविलम्ब सहायता के लिए पहुँच गये।

गुलाबदेवी तपेदिक अस्पताल- तपेदिक के रोगियों के औषध उपचार और खुले स्वच्छ वातावरण में रहते हुए भोजन-निवास आदि की समुचित व्यवस्था के लिए लालाजी ने अपनी स्वर्गीय पत्नी की स्मृति में लाहौर में 'गुलाबदेवी तपेदिक अस्पताल' खोला था। विभाजन के बाद, जालन्धर में इसकी पुनः स्थापना की गई।

लाहौर की जनता ने लालाजी को कंधों पर उठा लिया-लालाजी के जीवन पर अन्य जिन व्यक्तियों का गहरा प्रभाव पड़ा वह थे इटली की स्वाधीनता-संग्राम के नेता मेजिनी गैरीबाल्डी और भारत के महापुरुष भगवान् श्रीकृष्ण तथा वीर शिवाजी थे। आपने उर्दू में इन सब महापुरुषों के जीवन-चरित्र प्रकाशित किये। सरकार इससे घबरा गई और गुप्त सरकुलर निकालकर स्कूलों में इन पुस्तकों का प्रवेश निषिद्ध कर दिया।

बंग-भंग और अकाल- 1905 में भारत के वायसराय लार्ड

कर्जन ने बंगाल के राजनीतिक आन्दोलन को निर्बल करने और मुसलमानों को खुश करने के लिए बंगाल के दो टुकड़े कर दिये, पूर्व और पश्चिम बंगाल। इससे सारे देश में विरोध की ज्वालाएँ भड़क उठीं। गुप्त षड्यन्त्र दल कायम हो गए। कई जगह यूरोपियन मारे गये। इस समय लालाजी देश के प्रमुख राजनीतिक नेताओं में थे। 1903 में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में पहली बार हुआ। लाला जी अब लाहौर में ही वकालत करते और वे प्रमुख वकील माने जाते थे। इस अधिवेशन में लाला जी ने काफी हिस्सा लिया और यहाँ इनका लोकमान्य तिलक और श्री गोखले से परिचय हुआ जो बाद में काफी घनिष्ठ हो गया।

पगड़ी सँभाल ओ जट्टा– पंजाब की नौकरशाही की आँखों में लाला जी खूब चुभ रहे थे। यह मौके की तलाश में थी। प्रान्त का तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर इबटसन बड़ा अदूरदर्शी और कट्टर गोरा सिविलियन था। 1907 में उसने पंजाब की शहरी आबादियों, लायलपुर और मिंटगुमरी के जिलों में ऐसे भूमि–कानून बनाये जिससे इलाके के किसानों में खलबली मच गई। उधर, रावलपिंडी के इलाके में भूमि का लगान बढ़ा दिया। इस प्रकार सारे पंजाब के जमींदार तिलमिला उठे। इसमें हिन्दू, मुसलमान, सिख सभी शामिल थे। लायलपुर और रावलपिंडी–दोनों इस आन्दोलन के मुख्य केन्द्र थे। सरदार अजीतसिंह–(शहीद भगतसिंह के चाचा) इसके प्रमुख नेता थे। लाला जी का इस आन्दोलन से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था। 1907 मार्च के अन्त में लायलपुर में 'जमींदार एसोसिएशन' की ओर से एक सभा की गई। संयोजकों के अत्यन्त अनुरोध पर लाहौर के कुछ प्रमुख हिन्दू–मुस्लिम वकीलों के साथ लाला जी वहाँ पहुँचे और उन्होंने केवल वह आवेदन पत्र पढ़कर सुनाया जो सरकार के पास इस कानून के विरोध में भेजा जाना था। अजीतसिंह के भाषण खूब गर्म थे और जनता बार–बार उनसे बोलने के लिए आग्रह कर रही थी। यहाँ पर पंजाब का

प्रसिद्ध गीत 'पगड़ी सँभाल जट्टा' पहली बार श्री बांकेदयाल ने गाया था और जनता ने बहुत पसंद किया था।

मांडले को देश-निर्वासन-लालाजी की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में अब लाहौर में अफवाहें उड़ रही थीं। कुछ गोरे शासकों ने संकेत किया कि "सारी शरारत की जड़ तो लाला लाजपतराय हैं। पर वह अभी तक स्वतंत्र घूम-फिर रहा है और जल्दी ही उसकी बारी आने वाली है।" आखिर 9 मई 1907 को प्रातः जब लाला जी कचहरी जाने को तैयार ही थे, तभी अनारकली थाने के दो पुलिस अधिकारी उन्हें बुला ले गये। कोठी से अपनी बग्घी पर वह बाहर निकले ही थे कि दो गोरे पुलिस वाले पायदान पर चढ़ गए। यहीं से बन्द गाड़ी में स्टेशन पर तैयार एक स्पेशल गाड़ी द्वारा जिसमें पुलिस का कड़ा पहरा था और जिसकी सब खिड़कियाँ दरवाजे बन्द थे-उन्हें कलकत्ता और वहाँ से जहाज द्वारा बर्मा और अन्त में 15 मई को मांडले जेल में बन्द कर दिया गया। लाला जी को यह पता लग गया कि स. अजीतसिंह को भी यह निर्वासन-दंड दिया गया है। दोनों मांडले जेल में होते हुए भी एक दूसरे से मिल नहीं सकते थे। यहाँ पर एक गोरे अधिकारी ने लाला जी से मुलाकात करते हुए कहा, "आपने सेनाओं को बरगलाया था और ब्रिटिश सरकार आपको दूसरा नाना साहब समझती है।"

मांडले से मुक्ति- लाला जी का यह देश-निर्वासन सरकार को बड़ा महंगा पड़ा। सारे देश में प्रबल आन्दोलन, असन्तोष और विरोध की भयंकर अग्नि भड़क उठी। इसकी गूँज ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में भी लगातार उठने लगी। वहाँ मेम्बरों द्वारा, तकरीबन हर रोज़ ही, लाला जी के इस निर्वासन पर भारत-मंत्री लार्ड मार्ले के लिए सन्तोषजनक उत्तर देना कठिन हो जाता। स्थिति को संभालना दिन-प्रतिदिन कठिन हो रहा था। यह भी स्पष्ट हो चुका था कि लाला जी के विरुद्ध ऐसा गम्भीर आरोप नहीं था जिसके लिए सामान्य अदालती कार्यवाई न कर

विशेष कानून के अधीन ऐसी कठोर सजा को न्यायसंगत ठहराया जा सकता। अखिर 11 नवम्बर 1907 को लाला जी को मुक्ति का सन्देश मिल गया। फिर उसी प्रकार बंद गाड़ी और कड़े पुलिस पहरे में लाला जी को मध्यप्रदेश के रास्ते से लाहौर लाया गया। स. अजीतसिंह को दूसरी गाड़ी से लाया गया।

कलकत्ता कांग्रेस की अध्यक्षता–कांग्रेस का प्रचार करने और विदेशों में भारत की दशा से जनता को परिचित कराने के लिए लाला जी कई बार यूरोप–अमेरिका गये। प्रथम युद्ध के समय तो उनके भारत वापस जाने पर रोक लगा दी गई थी। जब वह वापस आये तो कांग्रेस का नेतृत्व गाँधी जी के हाथ में आ चुका था। लाला जी ने इसमें पूरा सहयोग दिया। 1999 में गाँधी जी के असहयोग कार्यक्रम पर विचार करने के लिए कलकत्ता में विशेष कांग्रेस अधिवेशन हुआ जिसके लिए लाला जी के सहयोग से गाँधी जी का सविनय अवज्ञा का आन्दोलन देश भर में विशेषतः पंजाब में, जोरों से चलने लगा। 1921 दिसम्बर में लाला जी को गिरफ्तार कर लिया गया और लाहौर जेल में दो वर्ष के कारावास के दंड के साथ बन्द कर दिया गया।

कांग्रेस से मतभेद–स्वराज्य पार्टी में– इसके बाद भारतीय राजनीति में परिवर्तन आने लगा। एक ओर देश में साम्प्रदायिक दंगे शुरु हो गए और दूसरी ओर गाँधी जी के पंचसूत्री बहिष्कार कार्यक्रम की व्यर्थता देख जेल से छूट कर आये नेताओं ने इस पर पुनः विचार किया। इसी के फलस्वरूप स्वराज्य पार्टी का जन्म हुआ। पंजाब का चार्ज लाला जी को दिया गया। पर लाला जी के कांग्रेस से मतभेद हो गए। कांग्रेस नेताओं की नीति अत्यधिक मुस्लिम–पक्षीय थी। हिन्दू हितों की खुलेआम हत्या हो रही थी। काकीनाडा कांग्रेस में अध्यक्ष पद से मौलाना मुहम्मद अली ने प्रस्ताव किया था कि अछूतों का हिन्दू और मुसलमानों में बँटवारा कर दिया जाए। लाला जी इस प्रस्ताव से बहुत दुःखी और विक्षुब्ध हुए। आपने सन् 1925

के आरम्भ में अछूतोद्धार का आन्दोलन शुरु किया। कांग्रेस आन्दोलन के समय आपने उर्दू में 'वन्दे मातरम्' दैनिक आरम्भ किया था और अब "पीपुल" नामक अंग्रेजी में साप्ताहिक जारी किया। यह पत्र राजनीति-प्रधान था। आपने कई पुस्तकें लिखीं। जिनमें 'अनहैप्पी इंडिया' का बहुत प्रचार हुआ। लाला जी यह जानते थे कि निष्ठावान् कार्यकर्ताओं के बिना राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता। इसी दृष्टि से आपने 'लोक सेवक मंडल' (सर्वेण्ट्स ऑफ पीपुल सोसाइटी) की स्थापना की। जिसके द्वारा तैयार किये हमारे देश के प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्री तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन भी इसी संस्था के सदस्य थे। वस्तुतः श्री लालबहादुर को राजनीतिक जीवन की दीक्षा लाला जी के सम्पर्क और उनकी इस संस्था में आने से ही मिली। लाला जी ने इस संस्था को अपना 40 हजार पुस्तकों का पुस्तकालय और डेढ़ लाख रु. का अपना भवन दान दे दिया था। 1925 में लाला जी स्वराज्य पार्टी की ओर से केन्द्रीय असेम्बली में जालन्धर क्षेत्र से निर्विरोध चुन लिये गये।

साइमन कमीशन का बहिष्कार और लाठी प्रहार– ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त पूर्ण अंग्रेजों का कमीशन जिसे साइमन कमीशन कहा जाता है– भारत की वैधानिक योग्यता की जाँच के लिए 1928 फरवरी में भारत आया। कांग्रेस ने इसके पूर्ण बहिष्कार की घोषणा की। 30 अक्टूबर को कमीशन लाहौर पहुँचा। इस बहिष्कार-आंदोलन का नेतृत्व लाला जी कर रहे थे। भारी जुलूस 'साइमन लौट जाओ' नारे लगाता हुआ स्टेशन पर सर्वथा शान्त और अनुशासन में खड़ा था। अधिकारियों ने उसी समय शान्त जुलूस पर पुलिस को डंडे चलाने का आदेश दे दिया। लाला जी पर खास तौर पर लाठी-प्रहार किया गया और स्वयं सीनियर सुपरिण्टेण्डेण्ट स्कॉट ने यह कार्य किया। स्कॉट का साथी साण्डर्स भी इसमें सहायक था। लाला जी ने बड़ी वीरता से इन लाठी-प्रहारों को सहा। आपने ललकार कर पुलिस अफसर का नाम पूछा, पर

इसका उत्तर अधिक दंड प्रहार से मिला। इस मार से 64 वर्षीय वृद्ध लाला जी चारपाई पर पड़ गये। वे फिर उठ न सके। लाला जी व जनता की ओर से इस कांड की खुली और निष्पक्ष जाँच की माँग की गई, पर नौकरशाही राजी न हुई।

प्रत्येक लाठी ब्रिटिश साम्राज्य के कफन पर कील– इस बीमारी में भी लाला जी कार्य करते रहे। 16 नवम्बर को उनकी हालत बिगड़ गई। 30 अक्टूबर की शाम को सार्वजनिक सभा में लाला जी ने जो शानदार शब्द कहे थे वे सचमुच ब्रिटिश अत्याचारियों के लिए भयंकर चेतावनी के रूप में थे और इतिहास में सदा स्मरण किये जाएँगे। आपने कहा– "मुझ पर किया हुआ प्रत्येक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील सिद्ध होगा।" 17 नवम्वर भोरवेला में देश का यह साहसी वीर, अदम्य उत्साही और बहुमुखी प्रतिभाशाली नेता समूचे देश को शोक–सागर में डुबोकर मातृभूमि पर बलिदान हो गया।

आर्यसमाज के प्रति असीम कृतज्ञता– लाला लाजपतराय ने मांडले के देश–निर्वासन से वापस आकर 1906 में लाहौर आर्यसमाज के मंच से जो शब्द कहे थे और जो उन्होंने अपनी आत्म–कथा में भी लिखे हैं, वह प्रत्येक आर्य सदस्य के लिए स्मरणीय हैं। लाला जी आर्यसमाज के प्रति कितने निष्ठावान और कृतज्ञ थे, यह उनके निम्न शब्दों से प्रकट होता है:–

"आर्यसमाज के उपकार मेरी गर्दन पर अनगिनत असीम हैं। अगर मेरा बाल–बाल आर्यसमाज पर न्यौछावर हो जाए, तो भी मैं उसके उपकारों से उऋण नहीं हो सकता। यदि मैं आर्यसमाज में दाखिल न होता तो ईश्वर ही जाने मैं क्या होता। मगर यह सच है कि मैं आज जो कुछ हूँ वह न होता।"

आर्यसमाज में कृतज्ञता की इस अगाध भावना को निष्ठा के साथ अविचल रूप से प्रतिष्ठित करने की विशेष आवश्यकता है।

संवाद और संवेदना का शिखर
(अटल जी ने सबको साथ लेकर चलने की राजनीतिक संस्कृति विकसित की)

-बृजेश शुक्ल

उस दिन लखनऊ के मीराबाई अतिथि गृह में अटल बिहारी बाजपेयी से मिलने के लिए प्रवेश ही किया था कि देखा पूर्व प्रधानमंत्री चंद्रशेखर तेजी से वाजपेयी के कमरे की ओर बढ़ रहे हैं। तब तक बीजेपी नेताओं ने बाजपेयी को बता दिया था कि चंद्रशेखर उनसे मिलने आ रहे हैं। अटल जी तेजी से उठे और दरवाजे तक आ गए। चंद्रशेखर ने अटल जी को देखते ही कहा कि गुरुवर आप भी यहीं। दोनों नेता जिस आत्मीय भाव से एक-दूसरे से मिले, वह अपने में अलग ही दृश्य था। वैचारिक रूप से दोनों एक दूसरे के विपरीत थे, लेकिन लोकतांत्रिक परंपरा व राजनीतिक विनम्रता, संवाद, सौहार्द का यह वह रूप था, जो अब विलुप्त होता जा रहा है। अटल बिहारी वाजपेयी भारतीय राजनीतिक धारा के वह अजातशत्रु थे जिन्हें विरोधी भी हमेशा सम्मान से देखते रहे।

लोकतंत्र के मूल्य

राजनीतिक रूप से उनके धुर विरोधी भी इस महान नेता पर यह कह कर तंज कसते रहे कि एक अच्छा नेता गलत पार्टी में हैं। यह सुनकर अटल जी भी खूब हँसते हुए कहते थे कि यह अजब बात है कि मैं अच्छा हूँ लेकिन मेरी पार्टी गड़बड़ है। वर्ष 1991 में जब अटल जी लखनऊ लोकसभा चुनाव लड़ने आए तो शायद किसी को भी यह अहसास नहीं था कि वह इसी शहर के होकर रह जाएँगे। उन्हें लखनऊ में चुनौती देने के लिए विपक्षियों ने हर तरह की जोर-आजमाइश की लेकिन कोई दाँव काम नहीं आया। कर्ण सिंह से लेकर राजबब्बर और मुजफ्फर अली तक चुनाव में अटल के नजदीक भी नहीं पहुँच पाए। बतौर पत्रकार अटल जी को चुनाव लड़ते मैंने कई बार देखा, मगर कभी भी प्रतिद्वंद्वियों की आलोचना करते उन्हें नहीं सुना। वे व्यक्तिगत हमले जरूर झेलते थे लेकिन उन्होंने कभी किसी पर निजी हमले नहीं किए।

1998 में उनके खिलाफ प्रसिद्ध फिल्मकार मुजफ्फर अली मैदान में थे। बख्शी तालाब में श्री वाजपेयी और मुजफ्फर अली का काफिला आमने-सामने आ गया। बीजेपी कार्यकर्त्ता नारेबाजी करने लगे। वाजपेयी जी तुरंत अपनी गाड़ी से बाहर आए और कार्यकर्त्ताओं से कहा कि पहले मुजफ्फर अली जी का काफिला जाएगा और वैसा ही हुआ। 1991 के लोकसभा चुनाव में एक प्रमुख अखबार ने सर्वे छापा कि अटल जी अपने निकटतम प्रतिद्वंद्वी से बहुत पीछे चल रहे हैं। इस सर्वे से वाजपेयी जी बहुत नाराज थे। उस दिन वे लखनऊ में थे। शाम को जब वे कार्यकर्ता सम्मेलन में पहुँचे तो यह अनुमान लगाया जा रहा थ कि वे अखबार के प्रति अपनी नाराजगी जाहिर करेंगे। लेकिन उन्होंने मजाकिया अंदाज में कहा कि एक सर्वे आया है जिसमें बताया गया है कि मैं बहुत पीछे चल रहा हूँ। कार्यकर्त्ता सतर्क हो जाएँ। अभी मैं पिछड़ा हुआ हूँ। बीजेपी में व बाहर यह चर्चा चलती रही कि पार्टी में अटल व अडवाणी के अलग-अलग गुट हैं लेकिन इन दोनों नेताओं ने पार्टी का कोई भी बड़ा निर्णय एक दूसरे से राय-मशविरे के बिना नहीं लिया।

1999 में उत्तर प्रदेश बीजेपी में महाभारत छिड़ी हुई थी। कल्याण सिंह विद्रोही हो गए थे। अटल जी पर तीखे हमले हो रहे थे। उन पर 'टायर्ड रिटायर्ड' जैसे शब्दबाण चल रहे थे। बीजेपी के एक वरिष्ठ नेता वाजपेयी से मिलने गए। उन्होंने अटल जी से कहा कि अब सब्र का प्याला छलक रहा है, आप कुछ बोलिए। वाजपेयी चिर-परिचित अंदाज में खिलखिला कर हँसे और कुछ देर चुप रहने के बाद बोले, "मैं क्या बोलूँ। इस तरह की शब्दावली का क्या जवाब दूँ।' उन्होंने न तो कभी भी अपने ऊपर लगे आरोपों की सफाई दी और न ही अपने प्रतिद्वंद्वियों पर व्यक्तिगत हमले किए। बाद में 2004 में अटल जी ने ही कल्याण सिंह को वापस पार्टी में लाने में अहम भूमिका निभाई।

जनता से संवाद व संवेदना का सरोकार कैसे हो, कोई अटल जी से सीखे। 1998 में प्रदेश में बीजेपी की सरकार थी।

लखनऊ के बीजेपी विधायक कई जनसमस्याएँ लेकर उनके पास पहुँचे। विधायकों ने कहा कि सड़कों पर ठेलों में सामान बिकता है जिससे दिक्कत होती है। वाजपेयी ने कहा कि हम किसी को रोजगार दे नहीं सकते तो फिर लें कैसे? रेहड़ी वालों की वजह से पैदा होने वाली समस्या का समाधान होना चाहिए। लेकिन यह समाधान उन्हें बाहर करके नहीं हो सकता। वे राजनीतिक छुआछूत नहीं मानते थे। लखनऊ के पास एक गाँव में लोगों ने अटल जी का कार्यक्रम रखा लेकिन संघ के कुछ स्थानीय नेताओं ने आयोजकों पर पूर्व में कांग्रेसी होने के आरोप लगा कार्यक्रम रद्द करा दिया। जब यह बात वाजपेयी को पता चली तो उन्होंने कहा कि पहले तो पूरा देश ही कांग्रेसी था। वह उस कार्यक्रम में गए। वे राष्ट्रीय राजनीति के शिखर पुरुष थे लेकिन नगर निगम चुनाव में भी अपनी पार्टी के प्रत्याशियों का प्रचार करते थे।

बदल गया माहौल

एक विधानसभा चुनाव में उन्हें अहसास हो गया कि उनके ही लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले ग्रामीण विधानसभा क्षेत्र महोना में उनके प्रत्याशी से लोग कुछ नाराज हैं। जनसभा में अपने चिर-परिचित अंदाज में उन्होंने कहा कि आप लोग कुर्ता तो मुझे देना चाहते हैं लेकिन पाजामा किसी और को देना चाहते हैं। पहनाना तो दोनों पहनाना। इस वाक्य ने चुनावी माहौल बदल दिया। अटल जी का चालीस साल का राजनीतिक सफर इस बात का गवाह है कि लोकतंत्र में संवेदना व संवाद का क्या महत्त्व होता है। इसमें मनभेद नहीं मतभेद होते हैं। एक बार वे लखनऊ में एक बीमार पत्रकार को देखने गए थे। मैं भी उनके साथ था। पत्रकार ने कहा कि बहुत कष्ट है। वाजपेयी जी ने कहा, 'मेरे बाबा कहा करते थे कि देह धरे को दंड है, हर काहू को होय।' तब मैंने सोचा भी नहीं था कि प्रकृति का यह अटल नियम अटल जैसे अजातशत्रु पर भी लागू होगा।

संसद : एक विहंगम दृष्टि

–सुभाष कश्यप
(पूर्व महासचिव, लो.स.)

संसद के गत 60 वर्षों पर विहंगम दृष्टि डालें तो देखेंगे कि पहली लोकसभा से पन्द्रहवीं लोकसभा तक आते-आते संसद के चरित्र, चेहरे और चलन में भारी बदलाव आया है। नए स्वरूप और समस्याएँ, नई पहचान और नए आयाम सामने आए हैं। भारतीय संसद के सम्बन्ध में इधर जो बात सबसे अधिक कही जाती है और जिससे समाचारपत्रों की सुर्खियाँ बनती हैं, वह है सदन में सदस्यों का आचरण। एक-दूसरे के ऊपर चिल्लाना, घूँसे दिखाना, कागज-छीनना, फाड़ना और कागज़ के प्रक्षेपास्त्र बनाकर मन्त्रियों पर फेंकना, यदा-कदा हिंसा पर उतर आना, कितने ही अन्य प्रकार की अव्यवस्था, नारेबाजी, शोरगुल, हंगामा, अनुशासनहीनता, पीठासीन अधिकारी की अवज्ञा, अध्यक्ष के आसन्न के पास आकर धरना और कार्यवाही को न चलने देना। इसमें कोई छिपी बात नहीं है कि इधर कुछ वर्षों में राजनीतिज्ञों और सांसदों की आस्था और सम्मान के प्रति जनता की सोच बदली है। सदनों की कार्यवाही को दूरदर्शन पर देखकर आम नागरिक की प्रतिक्रिया कुछ सुखद नहीं होती।

संसद जिसे विशेषकर विधि बनाने वाली संस्था समझा जाता था, उसके लिए विधि निर्माण कार्य गौण हो गया। जहाँ प्रथम लोकसभा में 48.74 प्रतिशत समय विधि निर्माण पर लगा था, वहीं अब औसतन 13 प्रतिशत से कम समय इस काम पर लगने लगा। सदस्यों की पृष्ठभूमि और पहचान में भारी परिवर्तन हुए। 1947-1962 के बीच संसद काफी कुछ अभिजात, समृद्ध शहरी परिवारों से आए अंग्रेजी स्कूलों में पढ़े-पनपे लोगों से भरी थी। वकीलों-वैरिस्टरों का व्यावसायिक समूह सबसे बड़ा था। सम्भवतः यही कुछ कारण थे कि संसद के

दोनों सदनों में वाद-विवाद का स्तर बहुत ऊँचा रहता था। गत 60 वर्षों में हमारी संसद में कितने ही ऐसे विशिष्ट और गुणी पुरुष और महिला सांसद हुए हैं जो संसदीय वाद-विवाद में पटुता, प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों पर अधिकार, वाक्-कौशल, संसदीय संस्कृति और परम्पराओं के प्रति निष्ठा तथा व्यक्तिगत शालीनता के लिए जाने जाते रहे। हम उन पर गर्व कर सकते थे। विश्व की किसी भी संसद के वे गौरव होते। जब देश के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु धीरे-धीरे दबे पाँवों से सदन में प्रवेश करते थे और बड़े विनम्र भाव और बड़ी गरिमा के साथ अध्यक्ष सहित पूरे सदन का सिर झुकाकर अभिवादन करते थे तो दृश्य दर्शनीय होता था। वह घंटों संसद में बिताते और संसद की कार्यवाही को ध्यानपूर्वक सुनते थे। कभी-कभी अपनी कटु आलोचना और प्रहारों को भी वह मुस्कराकर सुनते रहते थे। नेहरु जी संसदीय गरिमा और गौरव स्थापित करने वालों में अग्रणी माने जाएँगे। जब डॉ. अम्बेडकर, डॉ. लोहिया, आचार्य कृपलानी, कृष्णा मेनन जैसी दिग्गज़ हस्तियों के सदन में बोलने की बात फैलती तो मिनटों में सदन और उसकी दीर्घाएँ लबालब भर जाती थीं। कामथ और मधु लिमये प्रक्रिया के मास्टर थे तो कुंजरू और पटनायक जिन विषयों पर बोलते, उनके विशेषज्ञ थे। गोविन्द बल्लभ पंत की अपनी अलग ही शैली थी। वह पहले प्रतिद्वंद्वी की प्रशंसा करते, उनकी कही बातों में अच्छाइयों की ओर संकेत करते और फिर इतनी कोमलता और दक्षता के साथ उनके एक-एक तर्क को काटते कि लोग हतप्रभ रह जाते। वाद-विवाद में पंत से हारने में भी सुख मिलता था। पीलू मोदी, ढिल्लों, कृपलानी, डॉ. लोहिया और फिरोजगाँधी जैसे कई लोगों को उनके अन्य संसदीय गुणों के अतिरिक्त हास्य विनोद की प्रतिभा के लिए संसद के इतिहास में सदैव याद किया जाएगा।

विशेषकर 1967 के बाद संसद के सदस्यों की पहचान में बहुत तेज बदलाव देखे गए। यद्यपि शिक्षा की दृष्टि से और जहाँ तक डिग्री आदि का सम्बन्ध है, पढ़े-लिखों की, उच्च शिक्षा प्राप्त सदस्यों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई, इसके बावजूद वाद-विवाद का स्तर और संसदीय कार्यों में सदस्यों की रुचि का स्तर गिरा। कतिपय सदस्यों के आचरण पर भी बारम्बर प्रश्नचिह्न लगे। संस्थाओं और अपने प्रतिनिधियों से जनता का विश्वास उठा।

सदस्यों में जो सबसे बड़े व्यावसायिक समूह उभरे, वे थे कृषकों के और राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के। संसदीय लोकतंत्र के लिए सैद्धान्तिक द्विदलीय राजनीतिक व्यवस्था अभी तक नहीं उभर सकी है। बड़ी रोचक बात है कि प्रारंभ के दशकों में जब विपक्ष संख्या में बहुत कमजोर था तब वह बहुत अधिक सक्षम और प्रभावी सिद्ध हुआ क्योंकि अब दल-बदल केवल व्यक्तियों का न होकर समूहों में होने लगा। जो दशक बीते हैं उनमें संसद के सदस्यों के चरित्र, गठन, वाद-विवाद और कार्यकरण में जो परिवर्तन हुए उनसे सारी संसदीय संस्कृति ही बदल गई। पहले अन्तर्राष्ट्रीय और फिर राष्ट्रीय विषयों पर बहस को वरीयता मिलती थी। बाद में क्षेत्रीय और स्थानीय मामले ही अधिक महत्त्वपूर्ण हो गए, भले ही वह राज्यों की विधानपालिकाओं अथवा नगरपालिकाओं के लिए ही अधिक उचित क्यों न रहे हों। पहले क्षेत्रीय और स्थानीय समस्याओं को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देखा समझा जाता था, अब राष्ट्रीय समस्याओं को भी क्षेत्रीय, जातिगत, भाषाई, साम्प्रदायिक तथा अन्य ऐसे ही संकुचित आधारों पर जाँचा-सुलझाया जाने लगा। यह राष्ट्र के लिए चिन्ता का विषय है। जिसे त्रिशंकु लोकसभा की संज्ञा दी जाने लगी है, उसने संसदीय संस्कृति को और राजनीति को और भी क्षेत्रीय और संकुचित बना दिया। प्रधानमंत्री कौन हो

राष्ट्रपति कौन हो, किस प्रदेश का हो, किस सम्प्रदाय का, किस जाति का हो, यह सब निर्णय करते हैं छोटे-छोटे क्षेत्रीय दलों के नेता और राज्यों के मुख्यमंत्री।

संसदीय लोकतंत्र एक सभ्य और सुसंस्कृत प्रणाली है। उसकी अपनी एक संस्कृति है जो निर्णय करती है कि कौन-सा कृत्य संसदीय अथवा असंसदीय है।

भारत के लोग आज इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि 60 वर्षों तक संसदीय लोकतंत्र हमारे यहाँ सफलतापूर्वक चलता रहा। किन्तु साथ ही हमारे जनप्रतिनिधियों के प्रतिनिधि होने पर ही प्रश्नचिह्न लग गया है क्योंकि उनमें से अधिकांश कुल डाले मतों के भी अल्पमत से जीतकर आते हैं और उनके विरुद्ध पड़े मतों की संख्या उनके पक्ष में पड़े मतों से अधिक होती है।

स्वाधीनता और संसद दोनों ही अत्यन्त कोमल पौधे हैं। यदि इन्हें ध्यानपूर्वक सींचा-संजोया न जाए तो ये शीघ्र ही मुरझा जाते हैं। यदि हमें संसद और संसदीय लोकतंत्र को मजबूत बनाना है तो सबसे पहले ऐसा कुछ करना होगा जिससे संसद और सांसदों की पारम्परिक गरिमा पुनर्स्थापित हो और फिर से उन्हें जनमत में आदर और स्नेह का स्थान मिल सके। यह हमारा दुर्भाग्य है कि आज संसदीय जीवन को भी एक लाभकारी व्यवसाय के रूप में देखा जाता है। कहते हैं रोमन साम्राज्य का अभ्युदय हुआ और वह चरम शिखर पर पहुँचा जब उसके लोग अपना सब कुछ रोम को देना चाहते थे और रोमन साम्राज्य का पतन हो गया जैसे ही उन्होंने समाज से ज्यादा से ज्यादा लेना शुरु कर दिया। आशा करनी चाहिए कि आने वाले वर्षों में संसद को एक नई दिशा मिलेगी, संसदीय संस्थाओं का गौरव और सम्मान लौटेगा, राजनीति साम्प्रदायिकता, अपराधीकरण, भ्रष्टाचार जैसे दानवों से मुक्ति पाएगी तभी 'हमारे लोकतन्त्र और गणतन्त्र अधिक प्रशस्त होंगे।

भारत की दुर्दशा के कारण? उसके आन्तरिक शत्रु!

–भारतमित्र फ्रैंको गोतिए

(श्री गोतिए, फ्रांस के एक सिरमौर अंग्रेजी पत्र के भारत स्थित संवाददाता और पत्रकार हैं। उन्होंने भारत और हिन्दुओं के विरुद्ध रचे जा रहे विदेशी और देशी पंचमार्गियों के षड्यन्त्रों का पर्दाफाश करने के लिए अनेक लेख लिखे हैं। प्रस्तुत लेख अंग्रेजी दैनिक 'पायानियर' में छपा था जो बड़े पत्रों में शायद एकमात्र ऐसा पत्र है जो हिन्दुत्ववादी दृष्टिकोण को भी बराबरी के स्तर पर छापता है।)

मेरे द्वारा स्थापित जारी आतंकवाद के विरुद्ध मंच भारत और विश्व को कश्मीरी पण्डितों की दुर्दशा से परिचित करवाने का प्रयास कर रहा है। कश्मीरी पंडित बीसवीं सदी में मानवाधिकारों का उल्लंघन के सर्वाधिक शिकार लोगों में से एक है जिनकी न केवल पश्चिमी प्रैस द्वारा अपितु एमनेस्टी इण्टरनेशनल और संयुक्त राष्ट्र द्वारा भी पूरी तरह से उपेक्षा की गई है।

मैंने जब सुना कि 29 नवम्बर को भारत और यूरोपीय संघ की एक मीटिंग होगी तो निश्चय किया कि उन्हें विस्थापित कश्मीरी पण्डितों के विषय में स्थिति की चित्र-प्रदर्शनी दिखलाई जाए। मैंने तत्कालीन उपप्रधानमंत्री श्री लालकृष्ण अडवाणी से बात की जिन्होंने इण्डिया हैबिटेट केन्द्र में यह प्रदर्शनी देखी थी। उन्होंने उस समय के विदेश सचिव कंवल सिब्बल से जिन्हें मैं तब से अच्छी तरह जानता था जब वह पेरिस में भारत के राजदूत थे, से इस विषय में कहा। श्री सिब्बल ने सांस्कृतिक अनुसन्धान परिषद् (आई.सी.सी.आर.) से, विज्ञान भवन में इस प्रदर्शनी के आयोजन की प्रार्थना की और स्पष्ट निर्देश दिये कि यह प्रदर्शनी यूरोपीय प्रतिनिधियों को दिखलाई जाए।

आई.सी.सी.आर., जिसके पास विपुल धनराशि और स्टाफ है, के चार्टर में लिखा है- यह संस्था सांस्कृतिक कूटनीति के आदेशों का निर्वहन करती है। श्री मोहता ने जो आई. सी.सी.आर. में तीसरे स्थान पर हैं मुझे अगले दिन बुलाकर कहा कि हमने 23 नवम्बर रविवार को प्रैस के लिए पार्टी आयोजित की है, डॉ. मुरली मनोहर जोशी और नज़्मा हेपतुल्ला ने प्रदर्शनी का उद्घाटन करना मान लिया है।

एक आश्चर्य : जब मैं 23 नवंबर को सायंकाल वहाँ पहुँचा तो आई.सी.सी.आर. के अध्यक्ष डॉ. राकेश कुमार ने पूर्व प्राप्त अधिकार के अनुसार मुझे बतलाया कि उन्होंने प्रदर्शनी के तीसरे खण्ड को हटा दिया है जिसमें महाराजा हरिसिंह को दिखलाते हुए बताया गया है कि किस प्रकार उनके द्वारा अपने राज्य के भारत में विलय किये जाने से पूर्व पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया था कि पाकिस्तान ने भारत पर तीन और युद्ध थोपे और पाकिस्तान की हमेशा सहायता करने वाले चीन द्वारा 1962 के युद्ध में अधिकार में लिया गया भारतीय प्रदेश अभी तक उसके पास है। जब मैंने इसे हटाने पर आपत्ति जताई तो उन्होंने मुझे कहा-हम सबसे मित्रता चाहते हैं। डॉ. जोशी और श्रीमती हेपतुल्ला ने बड़ी शान से प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। प्रकाश चमके और टी. वी. कैमरे खड़खड़ा उठे।

एक और बात! यद्यपि हमने विदेशी संवाददाता क्लब के माध्यम से दिल्ली में स्थित पूरे विदेशी पत्रकार समूह को आमंत्रित किया था, फिर भी एक भी पश्चिमी पत्रकार या कूटनीतिज्ञ ने उद्घाटन में आने का कष्ट नहीं किया। हास्यास्पद बात यह है कि यदि मैं बेस्ट बेकरी मामले पर एक प्रदर्शनी लगाता तो वे अधिकतर राजदूतों, गैर-सरकारी संस्थाओं और राजधानी के मानवाधिकारवादियों के साथ सामूहिक रूप से आते और इसके विषय में बड़े ग्रन्थ लिख

डालते। यह कैसे संभव है, मैंने स्वयं से पूछा, कि जो मानव इतिहास में सर्वाधिक शान्तिप्रिय लोग हैं जिन्होंने अत्याचारों से पीड़ित कितने ही धार्मिक अल्पसंख्यक समूहों को अपने यहाँ शरण दी है, उन हिन्दुओं का नरसंहार कहीं कोई समाचार नहीं बनता! आप कश्मीरी पण्डितों के विषय में जो चाहें कहें परन्तु उन्होंने कभी भी अपने हाथों में बंदूक नहीं थामी।

दूसरा आश्चर्य : मुझे आई.सी.सी.आर. के उपनिदेशक श्री प्रदीप सिंह ने बताया कि 24 नवंबर की सांयकाल प्रदर्शनी बंद कर दी जानी है क्योंकि 29 नवम्बर को श्री वाजपेयी की होने वाली सभा की तैयारी के लिए विशेष सुरक्षा समूह (एस.पी.जी.) उस समय (5 दिन पहले) विज्ञान भवन की सुरक्षा-व्यवस्था सँभाल लेगा। परन्तु केवल मात्र 29 का ही एक दिन ऐसा है, जबकि प्रतिनिधि इस प्रदर्शनी को देख सकेंगे। मैंने उनसे तर्क-वितर्क किया परन्तु उनकी एकमात्र पूर्वधारणा थी कि क्या मैं प्रधानमंत्री को आने दूँगा जिसमें आई.सी.सी.आर. निदेशक को उनके साथ एक चित्र खिंचवाने का अवसर उपलब्ध हो सके। तब समय के लिए दौड़ होने लगी।

मैंने सुधीन्द्र कुलकर्णी, जिन्हें मैं मुम्बई में बलिट्ज का सम्पादक होने के समय से जानता था और जो अब प्रधानमंत्री कार्यालय में थे, से बार-बार कहा कि एस.पी.जी. प्रदर्शनी को खोल दें। मैंने उनसे यह भी पूछा कि क्या प्रधानमंत्री जी प्रदर्शनी में आ सकेंगे जिससे कि कश्मीरी पंडितों की समस्या का अच्छी तरह हित साधन संभव हो सके? मैंने विदेश मंत्रालय, गृह मंत्रालय, आईसीसीआर तथा विदेश सचिव के कार्यालय से सम्पर्क किया। उस महत्त्वपूर्ण सप्ताह में मैं जितने भी अधिकारियों से मिला, उनमें से किसी ने भी अपने संकटग्रस्त भाइयों के प्रति कोई सहानुभूति प्रदर्शित नहीं की। अन्त में, मुझे बताया गया कि एस.पी.जी ने प्रदर्शनी को हरी झण्डी दे दी है।

29 नवम्बर को 9 बजे प्रातः विज्ञान भवन में भिनभिनाते सैकड़ों सुरक्षा कर्मचारी, फुँकारते कुत्ते, बन्दूकें हिलाते विशेष दस्ते सब विदेशी प्रतिनिधियों से बदतमीजी करने में एक दूसरे से बढ़चढ़कर मुकाबला कर रहे थे। उनके कैमरे, सेलफोन, इलैक्ट्रोनिक डायरियाँ ज़ब्त कर ली गई थीं। साढ़े दस बजे कुछ थके-से लगते वाजपेयी जी अन्दर आये। भाषण पर भाषण चले- एक दूसरे से बढ़कर अर्थहीन। अन्तिम भाषण के बाद वाजपेयी जी अपनी कार में जा बैठे-प्रधामंत्री कार्यालय द्वारा आयोजित एक दूसरे कार्यक्रम में जाने के लिए जबकि सैकड़ों सुरक्षा कर्मचारियों ने राजधानी में आफत लाते हुए सारे मार्ग पर पंक्तिबद्ध होकर यातायात को रोक दिया।

एस.पी.जी. ने सुरक्षा की दृष्टि से प्रदर्शनी के द्वार बंद कर दिये। एक भी यूरोपीय प्रतिनिधि एशिया में मानव अधिकारों के हनन से सर्वाधिक पीड़ितों में से एक समूह-कश्मीरी पण्डितों की दुर्दशा को देखने नहीं आया और श्री वाजपेयी भी फिर कभी यह देखने नहीं आये कि उनके हिन्दू भाइयों पर आतंकवाद ने कितना जुल्म ढाया है।

एक सप्ताह तक अधिकारियों से सम्पर्क करने की अवधि में मुझ पर यह प्रभाव पड़ा है कि इस सरकार के दाएँ हाथ को यह पता नहीं है कि इसका बायां हाथ क्या कर रहा है (यदि चुनाव चल रहे थे, तो भी क्या?), एस.पी.जी. के अन्दर भी नेतागिरियाँ विभिन्न उद्देश्यों से कार्य कर रही हैं। शक्ति का भी इतना तरलीकरण हो गया है कि उस क्षण से जबकि श्री अडवाणी ने विदेश सचिव से पूरी सहायता करने की बात कहने के लिए फोन उठाया था, उसके आईसीसीआर पहुँचने तक उपप्रधानमंत्री कार्यालय का सब अधिकार और उसकी इच्छाओं और सन्देश का पूर्ण लोप हो गया था। उससे भी बढ़कर एक व्यक्ति पर यह प्रभाव पड़ता है कि सरकार में स्पष्ट दिशा निर्देश नहीं है और केवल

सर्वाधिक दबाव वाले कार्य किये जाते हैं– और केवल वे जो अनावश्यक और केवल राजनीतिक दृष्टि से ठीक है। दूसरे शब्दों में प्रधानमंत्री कार्यालय समेत अधिकारी केवल उन बातों में रुचि प्रदर्शित करते हैं जिन्हें वे प्रधानमंत्री की छवि चमकाने के लिए महत्त्वपूर्ण समझते हैं।

सभी लोग जीवनभर मानव स्वभाव की आत्मकेन्द्रित और मानवता विरोधी स्वार्थपरता के उदाहरण या तो पुस्तकों में पढ़ते हैं या फिल्मों में देखते हैं, पर वास्तव में कभी भी इससे 2–4 नहीं होते। परन्तु आईसीसीआर के प्रमुख अधिकारियों के लिए यह संस्था केवल राजदूत के पद तक पहुँचने की एक सीढ़ीमात्र है और अपने कार्य के लिए उनके पास कोई भी सांस्कृतिक योग्यता नहीं है। मेरे मामले में उन्होंने उपप्रधानमंत्री और विदेश सचिव के आदेशों की पूर्ण अवहेलना की और केवल अपने निजी उद्देश्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित रखा।

मैं न कश्मीरी पंडित हूँ न ही हिन्दू हूँ, यहाँ तक कि एक भारतीय भी नहीं, पर अपने दोषों और मामूली अहंभाव से युक्त केवल एक मानव हूँ। मैं हर समय यही सोचता हूँ कि आखिर मैं हूँ भी कौन भारत के लिए कुछ करने वाला? मेरे प्रयास की अत्यन्त महनीयता के मुकाबले उससे प्राप्त परिणाम का अनुपात अतितुच्छ रहा। हिन्दू/भारतीय अपनी सहायता आप क्यों नहीं कर सकते? यहाँ तक कि कश्मीरी पंडित स्वयं भी पूर्णतया असंगठित हैं– उनमें से अधिकतर विदेशों में हैं, जहाँ मेरी संस्था फैक्ट को काफी समर्थन प्राप्त है, और उनका अपनी निजी जाति की ओर भी कोई ध्यान नहीं है।

उस समय मैंने सब बात छोड़ दी। मैंने सोचा–अपनी सामर्थ्यानुसार मैं अधिकतम वह कार्य करूँगा जो मैं कर सकता हूँ और उसका परिणाम भगवान् पर छोड़ दूँगा।

पायोनियर से साभार

अहिंसा के ध्वजवाहक राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

-पण्डित वेदप्रकाश शास्त्री

आधुनिक काल में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी सत्य और अहिंसा के सर्वोच्च सन्देशवाहक थे। इन पर उनका अटूट विश्वास था। स्वाधीनता संग्राम में यही दोनों उनके शस्त्रास्त्र थे। सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन सत्य और अहिंसा पर ही आधारित धीरे-धीरे जन-आन्दोलन बन गया। इससे जनसाधारण में भी नवजागृति आ गई और जनता उनके पीछे चल पड़ी। कवि के शब्दों में-

चल पड़े जिधर दो डग, मग में,
चल पड़े कोटि पग उसी ओर।

कई बार हिंसक घटनाएँ होने के कारण उन्हें अपना आन्दोलन वापस भी लेना पड़ा। इतना होते हुए भी वह अपने कर्त्तव्यपथ पर अग्रसर रहे। वह अंग्रेज सरकार का कोपभाजन भी बने। अनेक बार कारागार गए। अंग्रेजों के द्वारा अपमानित एवं प्रताड़ित भी होना पड़ा। इतना होने पर भी हताश न होकर अविचलित रहे।

स्वाधीनता प्राप्ति के लिए उस समय नरम दल और गरम दल ये दो मार्ग थे। महात्मा गाँधी ने नरम दल की विचारधारा को प्राथमिकता दी। इसके विपरीत नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने गरम दल की विचारधारा का अनुकरण किया। दोनों का लक्ष्य एक, परन्तु मार्ग अलग-अलग।

यदि हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो प्रतीत होता है कि स्वतन्त्रता हेतु यह नरम और गरम दल दोनों ही लाभकारी सिद्ध हुए। एक ने अहिंसा के बल पर जन-आंदोलन चलाकर चेतना उत्पन्न की तो दूसरे ने सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा शत्रु पर दुष्कर प्रहार किया। नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने तो 'आजाद हिन्द फौज' का गठन कर शत्रु के छक्के छुड़ा दिए थे। इन दोनों पाटों के बीच में दब कर शत्रु को अपना बोरिया बिस्तर गोल करना पड़ा था।

महात्मा गाँधी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त ने केवल भारत में ही नहीं अपितु समस्त विश्व में ख्याति प्राप्त की। विश्व के अनेक नेता इससे प्रभावित हुए बिना न रह सके। अफ्रीका में भी गाँधी जी ने इसी सिद्धान्त को अपनाया था। सीमान्त गाँधी के नाम से प्रसिद्ध अब्दुल गफ्फार खां महात्मा गाँधी के अनन्य भक्त थे। नेल्सन मंडेला भी गाँधी जी के प्रति असीम श्रद्धाभाव रखते थे। गाँधी जी के सिद्धान्त के आधार पर ही उन्होंने अपना आन्दोलन चलाया था।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की कीर्ति अक्षुण्ण है। यद्यपि आज वह हमारे मध्य में नहीं है तथापि उनका सत्य-अहिंसा का सिद्धान्त हमारे लिए कीर्ति स्तम्भ है।

यस्य कीर्तिः स जीवति।

आप विस्मृत नहीं विश्वास है, सम्मुख नहीं पास है।
जिन्दगी के हर तिमिर में, आप ही तो प्रकाश हैं।

अहिंसा की महत्ता को स्वीकार करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) द्वारा 02 अक्तूबर, 2008 से ही 02 अक्तूबर को "अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस" के रूप में मनाने को मान्यता प्रदान की।

अतः महात्मा गाँधी की जयन्ती 02 अक्तूबर, 2018 को "अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस" के रूप में मनाते हुए उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि! करबद्ध कोटिशः नमन!

अहिंसा सन्देशवाहकस्य स्मृतिशेषो गांधिनः।
यशोगानं क्रियते सर्वैः पुण्यात्मन् नमोस्तुते।।

अहिंसा के सन्देशवाहक महात्मा गाँधी की आज केवल स्मृतियाँ ही शेष हैं। आज उनकी जयन्ती के उपलक्ष्य में सभी लोग उनकी यशोगाथा का गान करते हैं। हे पुण्यात्मन्! आपको हम सभी का बार-बार नमस्कार है।

4ई, कैलाशनगर, फाजिल्का, पंजाब

मो. 09463428299

आर्य समाज की महान विभूति : डॉ. भवानी लाल भारतीय

(11 सितंबर 2018 को दिवंगत)

–डॉ. विवेक आर्य

स्वामी दयानंद की वैदिक विचारधारा को जन-जन तक पहुँचाने में हज़ारों आर्यों ने अपने अपने सामर्थ्य के अनुसार योगदान दिया। साहित्य सेवा द्वारा श्रम करने वालों ने पंडित लेखराम की अंतिम इच्छा को पूरा करने का भरपूर प्रयास किया। डॉ. भवानीलाल भारतीय आर्य जगत् की महान विभूति थे जिनका सम्पूर्ण जीवन साहित्य सेवा द्वारा ऋषि के ऋण से उऋण होने के लिए प्रयासरत रहा। राजस्थान के नागौर जिले के परबतसर ग्राम में 1 मई 1928 को भारतीय जी का जन्म हुआ। प्रारंभिक शिक्षा के पश्चात् आपने अध्यापन करते हुए हिन्दी एवं संस्कृत दो भाषाओं में एम.ए. किया। कालांतर में आपने आर्यसमाज की संस्कृत भाषा को देन विषय पर शोध प्रबंध लिखा जिसे पंडित भगवत दत्त सरीखे मनीषी द्वारा सराहा गया। आप आर्यसमाज पाली, अजमेर के प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, परोपकारिणी सभा, सार्वदेशिक सभा के अधिकारी भी रहे। आप स्वामी दयानंद चेयर, पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़ के अध्यक्ष पद से सेवा निवृत्त हुए। डॉ. भारतीय जी का लेखन–

1. तुलनात्मक अध्ययन विषयक ग्रन्थ : ऋषि दयानंद और अन्य भारतीय धर्माचार्य, महर्षि दयानंद और राजा राममोहन राय, आधुनिक धर्म सुधारक और मूर्तिपूजा, महर्षि दयानंद और स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानंद ईसाई मत।
2. वेद विषयक ग्रन्थ : वेदों में क्या है? वेदाध्ययन के सोपान, उपनिषदों की कथाएँ भाग-1, ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद एवं अथर्ववेद परिचय, वेदों की अध्यात्मधारा, वैदिक कथाओं का सच, उपनिषदों की अध्यात्म धारा, ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद एवं

3. ऋषि दयानंद विषयक ग्रन्थ : महर्षि दयानंद का राष्ट्रवाद, ऋषि दयानंद और आर्यसमाज की संस्कृत भाषा और साहित्य को देन, महर्षि दयानंद श्रद्धांजलि, महर्षि दयानंद प्रशस्ति, ऋषि दयानंद के ऐतिहासिक संस्मरण, स्वामी दयानंद के दार्शनिक सिद्धांत, दयानंद साहित्य सर्वस्व, महर्षि दयानंद प्रशस्ति काव्य, मैंने ऋषि दयानंद को देखा, ऋषि दयानंद की खरी-खरी बातें, ऋषि दयानंद के चार लघु चरित, दयानंद चित्रावली (अंग्रेजी)

4. महापुरुषों के जीवनचरित : श्री कृष्ण चरित, पंडित गणपति शर्मा, स्वामी दर्शनानन्द, महात्मा कालूराम जी, कुँवर चाँद करण शारदा, नवजागरण के पुरोधा-स्वामी दयानंद, पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा, ऋषि दयानंद के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी, श्रद्धानंद जीवनकथा, राजस्थान के आर्य महापुरुष

5. आर्यसमाज विषयक ग्रन्थ : आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी, आर्यसमाज के वेद सेवक विद्वान, परोपकारिणी सभा का इतिहास, आर्यसमाज का अतीत और वर्तमान, आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार, आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय, आर्यसमाज का इतिहास,-पाँच खंड का विवेचन, आर्यसमाज के बीस बलिदानी।

6. स्वामी दयानंद के ग्रंथों का संपादनः चतुर्वेद विषय सूची, ऋग्वेद के प्रारंभिक 22 मंत्रों का भाष्य, दयानंद शास्त्रार्थ संग्रह, दयानंद उवाच, महर्षि दयानंद की आत्मकथा, उपदेश मंजरी, पंडित लेखराम रचित स्वामी दयानंद का जीवनचरित

7. अन्य ग्रन्थः बालकों की धर्म शिक्षा, पंडित रुद्र दत्त शर्मा ग्रंथावली भाग-1, शुद्ध गीता, दयानंद दिग्विजयार्क, कविरत्न प्रकाशचंद्र अभिनन्दन ग्रन्थ, पंडित महेन्द्र प्रताप शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ, स्वामी भीष्म अभिनन्दन ग्रन्थ, श्रद्धानंद ग्रंथावली 9 भाग, ऋषि दयानंद प्रशस्ति, श्री दयानंद चरित

8. विभिन्न ग्रन्थ : विद्यार्थी जीवन का रहस्य, ब्रह्मवैवर्त पुराण

की आलोचना, महर्षि दयानंद निर्वाण शताब्दी व्याख्यान माला, आर्य लेखक कोष - 1200 आर्यविद्वानों का लेखन परिचय

9. सत्यार्थप्रकाश विषयक ग्रन्थ : ज्ञानदर्शन-एकादश समुल्लास की व्याख्या, विश्वधर्म कोष-सत्यार्थप्रकाश, हिन्दू धर्म की निर्बलता

10. अनूदित ग्रन्थ श्रीमद्भागवत (गुजराती) मीमांसा दर्शन (गुजराती) आर्यसमाज-लाला लाजपतराय (अंग्रेजी) श्रद्धानंद ग्रंथावली-कांग्रेस एंड आर्यसमाज एंड इट्स डेट्रेकटेर्स, पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी-लाला लाजपत राय कृत का हिंदी अनुवाद, सूरज बुझाने का पाप (गुजराती)

इसके अतिरिक्त आर्यसमाज का विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में 1000 से अधिक शोधपूर्ण लेख भी शामिल हैं।

डॉ. भारतीय जी की साहित्य साधना करीब एक लाख पृष्ठों से अधिक हैं और 50 से अधिक वर्षों की साधना और तप का परिणाम हैं।

ऐसी महान विभूति को नमन।

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं,
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते,
जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्।।

(भर्तृहरिकृत-वैराग्यशतक, श्लोक-94)

भावार्थ-सामान्यरूप से मनुष्य की आयु सौ वर्ष की मानी गई है। इसका आधा भाग अर्थात् पचास वर्ष तो सोने में ही चले जाते हैं। शेष बचा आधे का आधा भाग अर्थात् पच्चीस वर्ष, वह बाल्यावस्था और वृद्धावस्था में बीत जाता है। शेष पच्चीस वर्ष का समय रोग, वियोग, आजीविका, बच्चों के लालन-पालन आदि दुःखों में बीत जाता है। जल की चञ्चल तरङ्गों के समान जीवन में मनुष्य को सुख कहाँ है? सुख तो ईश्वरोपासना में ही है।

THE PM WE MUST NOW REMEMBER

-Ramachandra Guha

This year has seen the publication of several books and numerous articles devoted to a prime minister previously forgotten or ignored: PV Narasimha Rao. Despite enjoying a full five year term in office, despite overseeing a major and defining shift in economic policy, despite effecting innovations in foreign policy such as the 'Look East' strategy, Narasimha Rao had thus far not got his due from scholars and commentators on Indian politics. There were two reasons for this. One was his conspicuous failure to prevent the destruction of the Babri Masjid and the communal riots that followed, a failure that in the eyes of many nullified his other archievements.

A second and perhaps more important reason for the neglect of Rao was that he had fallen foul of Sonia Gandhi. After she became Congress president in 1998, Mrs. Gandhi systematically erased Rao from the memory of the party and its members. To be sure, this was part of a wider effort to define the Congress as the property of a single family. While the achievements (real and imagined) of Nehru, Indira and Rajiv were magnified and broadcast, those of other Congress leaders were underplayed. In this rebranding the reputations of many remarkable Congressmen (and Congress women) suffered, but Rao's perhaps most of all.

The attention now belatedly paid to Rao is welcome. But the time has also come to revisit the legacy of a prime minister even more considerable than Rao, likewise a lifelong Congressman, who too has been largely erased from his party's

history by the family that has come to dominate it.

This is Lal Bahadur Shastri. Not long after Shastri became prime minister, he stopped in Karachi, then the capital of Pakistan, while on his way home from Cairo. He was met at the airport by President Ayub Khan, who, noticing his tiny frame and 26-inch chest, wondered how such a little man could rule such a large nation. It is said that this sight of Shastri in the flesh convinced Ayub (himself an Army General) that the time was ripe for a fresh incursion into Kashmir. He was convinced that the new leader of India would not be able to effectively defend his country when war came.

Ayub was mistaken. For, with his outstanding defence minister, YB Chavan, Shastri had already overseen the long overdue modernisation of our armed forces. In August 1965 Pakistan sent infiltrators into Kasmir, following this in early September with a major armed offensive. The Indian Army fought bravely, but the pressure on it was inense. In an inspired move, the prime minister ordered a fresh front to be opened in the Punjab, which immediately put the Pakistanis back on the defensive. Under Shastri's leadership, the armed forces acquitted themselves extremely well in the war of 1965, thus erasing memories of their ignominious defeat at the hands of China three years previously.

The slogan most associated with Shastri was 'Jai Jawan, Jai Kisan'. For Nehru's successor keenly understood the link between self-sufficiency in food and self-reliance in politics. It was Shastri who, along with another remarkable cabinet minister, C Subramaniam, laid the foundations of the Green Revolution, although it was Indira Gandhi who came to claim the credit,

since the gains from the new strains of wheat and rice took a decade to fructify, by which time Shastri, sadly, was dead.

There are many reasons to remenber Shastri now, when the agrarian sector is urgently in need of renewal, and when tensions with our always difficult neighbour are once more on the rise. Shastri was a self-effacing man, on the rise who wished to be remembered by his actions rather than his words. But when he did speak, he chose his words very wisely, never more so than in a speech he delivered at Delhi's Ram Lila Maidan in late September 1965 shortly after a cease-fire had been brokered by the United Nations.

The BBC had described the conflict that had just ended as a war between 'Hindu india' and 'Muslim Pakistan'. In his speech in the Ram Lila Maidan, Shastri refuted this pernicious allegation. The meeting was chaired by a veteran nationalist who happened to be a Muslim by birth. The speaker before Shastri was an Anglo-Indian lawyer who had been a prominent member of the Constituent Assembly. When it came to his turn to speak, the prime minister drew the crowd's attention to the company he was then proudly keeping. So Shastri said: 'Mir Mustaq who is presiding over the meeting is a Muslim. Mr. Frank Anthony who has addressed you is a Christian. There are also Sikhs and Parsis here. The unique thing about our country is that we have Hndus, Muslims, Christians, Sikhs, Parsis and people of all other religions. We have temples and mosques, gurudwaras and churches. But we do not bring all this into politics..... This is the difference between India and Pakistan. Whereas Pakistan proclaims itself to be an Islamic State and uses religion as a political factor, we Indians have the freedom to follow whatever religion we may choose [and] worship in any way we please. So far as politics is concerned, each of us is as much an Indian as the other'.

The attention recently paid to PV Narshimha Rao was because this year marks the 25th anniversary of the liberalisation of the Indian economy. However, the speech of Shastri I have just quoted is not just timely, but also timeless. It inevitably comes to mind when there are troubles with Pakistan. Yet it remains compellingly relevant in times of peace too. If India is to survive and thrive, religion must never be a factor in the political life of the Republic.

Gandhi Before India

Date of Pubn. : 301.11.2018 Posted at - NIE-H.O. Postal Date : 2-3 Dec. 2018
RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2017-2019

यमाय त्वा मरवायत्वा सूर्यस्य त्वा तपसे।
देवस्त्वा सविता मध्वानक्तुः पृथिव्याः संस्पृशयहि
अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि।। यजु. 37/11

हे ईश्वर, हमें संयम वाला बनाएँ। हम अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रख सकें। हमारा जीवन यज्ञमय (दूसरों का हित करने वाला) हो। हम सूर्य के समान तपस्वी हों और सदैव क्रियाशील बने रहें। हमें ईश्वर पृथ्वी के माधुर्य से युक्त करें। हम सांसारिक वस्तुओं के प्रलोभन और प्रदूषण से दूर रहें। हम पवित्रता और तपस्या की ज्योति बनें।

May God bless You to have self control and be able to control your Indriyas. You be Yajnik (doing sacrifice for others) You always be active like sun. You be blessed with honey sweet of earth. You be away from materialistic contamination of world. You be the light of purity and sacrifice. Yaju-37/11

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58